Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 20, Issue No. 4, October-2023, ISSN 2230-7540

भारतीय लोकतंत्र की वैचारिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर एक अध्ययन

रवि प्रताप नागवंशी[1]*, डॉ. अविनाश प्रताप सिंह[2]

[1] शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश, भारत
Email - Ravi8181887351@gmail.com

[2] सहायक आचार्य,राजनीति विज्ञान विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

सार - यह अध्ययन भारतीय लोकतंत्र की वैचारिक और ऐतिहासिक नींव पर गहराई से विचार करता है, तथा प्राचीन परंपराओं से लेकर समकालीन अभिव्यक्ति तक इसके विकास का पता लगाता है। यह शोध भारतीय लोकतंत्र की स्वतंत्रता के बाद की चुनौतियों और अनुकूलन की भी जाँच करता है, जो इसके लचीलेपन और सामाजिक न्याय, धर्मनिरपेक्षता और संघवाद की निरंतर खोज को दर्शाता है। ऐतिहासिक दस्तावेजों, संवैधानिक बहसों और समकालीन राजनीतिक विमर्श के व्यापक विश्लेषण के माध्यम से, यह अध्ययन विचारधाराओं के जटिल अंतर्संबंध को स्पष्ट करता है, जिसने भारतीय लोकतंत्र को आकार दिया है और इसे शासन की एक गतिशील और स्थायी प्रणाली बनाया है।

कीवर्ड: भारतीय लोकतंत्र, वैचारिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

----------X----------

परिचय

'लोकतंत्र' शब्द की उत्पत्ति और उत्पत्ति प्राचीन ग्रीक शब्द 'क्रेटोस' से हुई है, जिसका अर्थ है 'शक्ति' या 'शासन' और 'डेमोस' का अर्थ है 'लोग' या 'बहुत से', इस प्रकार लोकतंत्र का अर्थ है 'लोगों द्वारा शासन'। या 'अनेक लोगों द्वारा शासन'। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि लोकतंत्र मूल रूप से सरकार का एक रूप है जिसमें लोग सीधे या अपने आवधिक निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करते हैं।

लोकतंत्र और लोकतांत्रिक संस्थाओं की अवधारणा भारत के लिए किसी भी तरह से अलग नहीं थी। सरकार के गणतांत्रिक स्वरूप, स्थानीय स्व-संस्थाओं में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों की उपस्थिति प्राचीन भारत के कई हिस्सों में मौजूद थी। लोकतांत्रिक सोच और व्यवहार वैदिक युग से ही भारत के लोगों के जीवन के विभिन्न पहलुओं में व्याप्त थे। यह कहा जा सकता है कि वैदिक युग के पतन के बहुत बाद, यूनानी शहर-राज्य या यूनानी लोकतंत्र अस्तित्व में आया (कुमार, 2005)। प्राचीन शासकों ने एक-दूसरे के बीच परस्पर निर्भरता, सहयोग और सद्भाव विकसित करने के लिए विभिन्न वर्गों के बीच लौकिक "यज्ञ" (बलिदान) का प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व देखा। इस प्रकार यज्ञ उस प्रक्रिया का प्रतीक है जिसके माध्यम से विभिन्न श्रेणियों के पुरुषों की विशिष्टता का त्याग किए बिना विविधता को एकता में बदल दिया जाता है (रामाश्रय, 2005)।

भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति

आशुतोष वार्ष्णेय, सुमित सरकार, रजनी कोठारी, पार्थ चटर्जी, डी.एल.शेठ जैसे विद्वानों का मानना है कि भारत, जिसे दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र बताया गया है, का चरित्र बुर्जुआ और सत्तावादी हो सकता है। संविधान को समतावादी उद्देश्यों के साथ तैयार किया गया था और नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस ने सभी के लिए समानता और न्याय सुनिश्चित करने के लिए भारतीय राजनीति के दृष्टिकोण के रूप में समाज के समाजवादी पैटर्न को अपनाया था। 1991 के बाद से आर्थिक सुधारों, उदारीकरण (वार्ष्णेय आशुतोष, 2020) और वैश्वीकरण की नीतियों ने देश के विकास को लाने के लिए सरकार द्वारा स्पष्ट रूप से कदम उठाए हैं। इससे समाज में विभिन्न राजनीतिक संघर्षों को जन्म मिला। प्रतिद्वंद्वी अभिजात वर्ग, विशेष रूप से आर्थिक शक्ति हासिल करने वाले क्षेत्रीय अभिजात वर्ग, केंद्र सरकार से राजनीतिक शक्ति और संसाधनों में अधिक हिस्सेदारी की मांग करते हैं।

धीरे-धीरे नये अभिजात्य वर्ग राजनीतिक क्षेत्र में आये और सरकार की शक्ति को चुनौती दी (सुमित, 2011)। 1950 के दशक के अंत और 1960 के दशक की शुरुआत में, ग्रामीण इलाकों में भूमि सुधारों, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां पहले जमींदारी प्रणाली को प्रतिस्थापित किया गया था, ने अमीर किसानों के एक नए वर्ग के उद्भव के लिए जगह बनाई, जिन्होंने स्थानीय स्तर पर धन और राजनीतिक प्रभाव हासिल किया और राजनीतिक शक्ति हासिल की। उदाहरण के लिए हरित क्रांति एक ऐसा मामला है जहां हम पाते हैं कि नीतियां और राजनीतिक निर्णय अब नव समृद्ध राजनीतिक दबदबे वाले लेना चाहते हैं, और राज्य ने इन शहरी उच्च वर्गों का पक्ष लिया है। किसी भी कृषि कर की अनुपस्थिति से कृषि क्षेत्र को भी प्रमुखता मिली। 1960 के दशक के मध्य में गठित शक्तिशाली किसान लॉबी राजनीतिक प्रक्रिया पर हावी हो गईं। 1950 के दशक के दौरान उत्तर भारतीय राज्यों में अमीर किसानों के समूह ने कांग्रेस छोड़ दी और अपनी राजनीतिक पार्टी बनाई और राजनीति में एक मजबूत लॉबी के रूप में काम किया और एक भी प्रमुख पार्टी के अभाव में ये समूह मजबूत हो गए और सरकार के कामकाज को प्रभावित किया। पार्थ चटर्जी के अनुसार अधिकांश भारतीय राज्य भारतीय लोकतंत्र में प्रभुत्वशाली और निम्नवर्गीय वर्गों के बीच बंटे हुए हैं।

www.ignited.in

मार्क्सवादियों ने देश के कई हिस्सों में पूंजीवादी संबंधों के प्रभुत्व और अर्ध-सामंती तत्वों की निरंतर उपस्थिति को स्वीकार किया। यदि हम 1980 और 1990 के दशक के दौरान जमीनी स्थिति को देखें, तो यह आधुनिक पूंजीवादी किसानों के उद्भव की बढ़ती घटना के साथ बंधुआ मजदूरी और जाति-संबंधित उत्पादन संबंधों के रूप में जारी सामंती संबंधों के सह-अस्तित्व को दर्शाता है। यह राज्य के अंगों और राजनीतिक संगठनों के व्यवहार से स्पष्ट है।(रजनी, 2007) साथ ही, व्यापक सामंती और अर्ध-सामंती संबंधों के बावजूद, स्पष्ट रूप से आधुनिक पूंजीवादी तत्व राजनीतिक प्रक्रिया में अधिक से अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। उदारीकरण प्रक्रिया उनके लिए पूंजी के नए स्रोत लेकर आई है। उन्होंने विश्व बाजार के साथ संबंध स्थापित किये हैं। इसके विपरीत, यदि विश्व बाजार उन्हें नुकसान में डालता है, तो वे अपने हितों की रक्षा के लिए राज्य पर दबाव डालते हैं। कुलीनों (अमीर किसानों) और निम्न जाति के लोगों के बीच संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। शिक्षा के माध्यम से निम्न जाति के लोग, दलित अपने शोषण के प्रति जागरूक हो जाते हैं और वित्त निगमों और बैंकिंग सुविधाओं के माध्यम से वे भी अपनी आर्थिक स्थिति को बढ़ाने का प्रयास करते हैं जो अभिजात वर्ग के साथ गंभीर संघर्ष लाता है जहां राज्य आम जनता के हितों को सुनिश्चित करने में विफल रहा है।

रजनी कोठारी के अनुसार (रूडोल्फ और रूडोल्फ, 2008) लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में धीरे-धीरे बुर्जुआ या कुलीन वर्ग को शामिल करने से लोकतंत्र का स्थान बाधित होता है। उनके अनुसार, कारपोरेटवादी हितों ने, लोकतंत्र द्वारा उत्पन्न संसाधनों का उपयोग करके, लोकतांत्रिक जनादेश को तोड़फोड़ करने और अपने हितों की पूर्ति करने की कोशिश की। इस अर्थ में, राज्य बड़ी पूंजी के हितों को आगे बढ़ाने के लिए लोकतंत्र द्वारा प्रदान की गई वैधता का उपयोग करने में सहायक बन जाता है, जो आज बड़े पैमाने पर वैश्विक पूंजी के भीतर एकीकृत है। लोकतंत्र की रीढ़ जनता को तेजी से अभिजात्य वर्ग के हितों की पूर्ति करने वाली जिम्मेदार पहचानों तक सीमित कर दिया गया। पहचानों के इस तरह के निर्माण और उनके प्रसार को आंशिक रूप से राज्य द्वारा ही बढ़ावा दिया जाता है। आशीष नंदी (मित्रा शर्मिला देब, 2009) ने बताया कि आधुनिकता ही लोकतंत्र के लिए हानिकारक है। भारत के कई हिस्सों में क्षेत्रीय बुर्जुआ के उद्भव ने स्थानीय हितों को सांस्कृतिक दावे के साथ जोड़कर एक तरफ सामंतवाद और दूसरी तरफ विदेशी पूंजी के साथ संबंधों के द्वंद्व को बनाए रखने की कोशिश की। यह दूरदर्शी है क्योंकि यह आधुनिक तकनीक और बाहरी बाजारों की तलाश में है और पीछे की ओर देख रहा है क्योंकि यह एक ही समय में उत्पादन पर सामाजिक बाधाओं को बनाए रखना चाहता है।

इसलिए कोठारी ने तर्क दिया कि आज भारतीय लोकतंत्र का आधार बहुत कमजोर है और चुनावी लोकतंत्र तेजी से बुर्जुआ प्रभुत्व की बढ़ती संरचना में समाहित हो गया है। परिभाषा के अनुसार लोकतंत्र में राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं में नागरिकों की भागीदारी शामिल है। ऐसी भागीदारी के लिए आवश्यक है कि समानता के विचारों को सभी नागरिकों तक बढ़ाया जाए। नागरिकों से स्वयं सकारात्मक भूमिका निभाने की अपेक्षा की गई थी और जागरूक नागरिक के रूप में कार्य करने के लिए उन्हें बुनियादी जानकारी, कौशल और आत्मविश्वास की आवश्यकता थी। नागरिकों को कई प्रकार की स्वतंत्रता और एक आश्वासन की आवश्यकता होती है कि नागरिक-समुदाय को प्राधिकरण के सभी तरीकों से लड़ने का अधिकार है। लेकिन भारतीय लोकतंत्र की प्रकृति का विश्लेषण करने पर यह मुख्य रूप से बुर्जुआ प्रकृति का प्रतीत होता है, जहां मुख्य राजनीतिक निर्णय टाटा, बिड़ला और बड़े उद्यमियों द्वारा लिए जाते हैं, न कि लोगों के प्रतिनिधियों (अर्थात राजनीतिक नेताओं) द्वारा जहां निर्णय लिया जाता है। शासन की प्रक्रिया में अभिजात्य वर्ग से अधिक थोप दिया गया है। इससे नागरिक और सरकार के बीच एक खाई पैदा होती है जो लोकतांत्रिक शासन में बाधा उत्पन्न करती है।

भारतीय राज्य, किसी भी आधुनिक राज्य की तरह, पूंजीवादी ताकतों के मुकाबले सापेक्ष स्वायत्तता और स्वतंत्रता का प्रयोग करता था (अतुल, 2001)। 1990 के दशक में जैसे ही राज्य और पूंजी के बीच एक नई साझेदारी मजबूत हुई, राज्य ने स्वेच्छा से अपने विकासात्मक और आर्थिक कार्य भारतीय और विदेशी पूंजीपति वर्ग को सौंप दिए। राज्य ने अब राज्य की सुरक्षा, कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए अपनी शक्ति केंद्रित करते हुए केवल रात्रि प्रहरी की भूमिका निभाई और राज्य की कल्याणकारी भूमिका पूंजीपति वर्ग को सौंप दी। राज्य को कृषि आंदोलनों, जातीय आंदोलनों, स्वायत्तता आंदोलनों और कभी-कभी श्रमिक आंदोलनों के कारण चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिन्हें नए तकनीकी-प्रबंधकीय पूंजीवादी राज्य द्वारा नियंत्रित किया जाना था। डी.एल.शेठ (शेठ, 2014) के अनुसार आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही लोकतांत्रिक निर्णय प्रक्रिया यानी लोकतांत्रिक निर्णय और जवाबदेही विश्व पूंजीवादी व्यवस्था की आधिपत्य शक्ति पर निर्भर करती है। आईएमएफ, विश्व बैंक और बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सरकार के अधिकांश निर्णयों को प्रभावित करती हैं जो दर्शाता है कि उदार लोकतंत्र अब वैश्विक समरूपीकरण के बड़े एजेंडे का एक हिस्सा है।

पार्थ चटर्जी ने तर्क दिया कि भारत में नागरिक समाज को पश्चिमी समाजों में उत्पन्न आधुनिक सहयोगी जीवन35 की संस्था के रूप में समझा जाता है जो समानता, स्वायत्तता, प्रवेश और निकास की स्वतंत्रता, अनुबंध, निर्णय लेने की विचारशील प्रक्रियाओं पर आधारित है और अधिकारों और कर्तव्यों को मान्यता देती है। सदस्यों का. बड़े जनसमूह की नागरिक समाज के क्षेत्र तक बहुत कम पहुँच थी और राज्य उन्हें नागरिक के रूप में नहीं, बल्कि सामान्य जन के रूप में पहचानता था, इसलिए चटर्जी के अनुसार भारत में नागरिक-समाज की सीमित उपस्थिति ने बुर्जुआ के आधिपत्य को बढ़ा दिया। समाज में इन अभिजात वर्ग का प्रभुत्व36 एक तरह से उदार लोकतंत्र के लिए चुनौती है और इस प्रभुत्व ने जनता को सरकार से विमुख कर दिया है। हॉब्स और लॉक दोनों ने व्यक्ति के विरोध करने के अधिकार पर जोर दिया था, भले ही इन अधिकारों को स्वामित्व वाले व्यक्तिवाद के ढांचे में बुर्जुआ या संपत्ति वर्ग के अधिकारों के रूप में अवधारणाबद्ध किया गया था। रूसो के लिए, सामान्य इच्छा आवश्यक रूप से बहुमत की इच्छा नहीं थी। सच्चा लोकतंत्र समानता, स्वतंत्रता, तर्क और न्याय के सिद्धांत के आधार पर लोगों के आत्मनिर्णय की प्राप्ति है। सबसे बड़ी संख्या में से सबसे बड़ी भलाई के उपयोगितावादी तर्क को भलाई के विविध मूल्यों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। उदार लोकतंत्र पर कट्टरपंथी परिप्रेक्ष्य बुर्जुआ लोकतंत्र के आवश्यक वर्ग चरित्र को इंगित करता है जो उदार लोकतंत्र के पतन और सामाजिक समूहों के हाशिए पर जाने और बहुसंख्यक शासन के परिणामस्वरूप होता है।

नेशनल इंस्टीट्यूशन फॉर ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया (नीति) आयोग का लक्ष्य मजबूत राज्यों का निर्माण करना है जो एक साथ आकर एक मजबूत भारत का निर्माण करेंगे। नीति आयोग शत-प्रतिशत सरकारी-नागरिक लेनदेन को डिजिटल प्लेटफॉर्म में बदलने की पहल का नेतृत्व कर रहा है। NITI देश को महत्वपूर्ण ज्ञान,

नवाचार और उद्यमशीलता सहायता प्रदान करता है। इसे सक्षम करने के लिए NITI सुशासन और सर्वोत्तम प्रथाओं पर अनुसंधान के भंडार के रूप में सभी राज्यों के नागरिकों के साथ एक कला संसाधन केंद्र बनाने का प्रयास कर रहा है। केंद्र-राज्य संबंधों को मौलिक रूप से पुनर्परिभाषित करते हुए, नीति आयोग ने पहली बार यह सुनिश्चित किया है कि सभी राज्यों को केंद्र सरकार के नीतिगत हस्तक्षेपों की रक्षा करने में अग्रणी भूमिका निभानी चाहिए। सहकारी संघवाद के लिए एक मंच प्रदान करने के लिए, यह संघ और राज्यों को समान रूप से काम करने की सुविधा प्रदान करता है। NITI यह सुनिश्चित करती है कि लोग शासन के सभी चरणों में शामिल हों और सूचित हों। नीति आयोग ने राज्य सरकारों द्वारा कई सुधार उन्मुख विधायी विधेयकों को अपनाने की प्रतीक्षा की, जिनका उद्देश्य भारत को बदलना और एक स्वस्थ केंद्र-राज्य संबंध विकसित करना और बेहतर शासन के लिए भारतीय राज्य की आधिकारिक प्रकृति को मोड़ना है।

बहुल समाज में भारतीय लोकतंत्र के लिए चुनौतियाँ

लगभग चार दशकों से भारत में लोकतंत्र कुछ हद तक एक विसंगति के रूप में सामने आया है। भारत एक कठोर श्रमिक सामाजिक संरचना वाला एक बहुराष्ट्रीय कृषि समाज है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय जनता को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल करने के साधन के रूप में लोकतंत्र की पेशकश की। इन सबके अलावा, भारत अभी भी, बेशक, एक कार्यशील लोकतंत्र है47, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि यह अच्छी तरह से शासित नहीं है। राजनीतिक व्यवस्था के क्षरण का प्रमाण हर जगह मौजूद है यानी राष्ट्रीय, राज्य और जिला सभी स्तरों पर पार्टी शासन की जगह व्यक्तिगत शासन ने ले ली है। शासकों के अधीन, मजबूत नागरिक और पुलिस सेवा का राजनीतिकरण कर दिया गया है। विभिन्न सामाजिक समूहों ने प्रदर्शनों में नई और अधिक विविध राजनीतिक मांगों को दबाया है जिसके कारण अक्सर हिंसा हुई है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह बताना है कि आज भारतीय लोकतंत्र किस तरह से चुनौती का सामना कर रहा है। रजनी कोठारी इस पहेली का उत्तर देने का प्रयास करते हैं कि क्यों "दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र" पर शासन करना मुश्किल हो गया है क्योंकि इसकी नेतृत्वकारी भूमिका के कारण संस्थागत गिरावट आई है (सैमुअल, 2018) जिसके परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक व्यवस्था में विभिन्न चुनौतियाँ आई हैं।

भारतीय राज्य और सत्तारूढ़ गठबंधन के सामने जो केंद्रीय समस्या है, वह राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में विभिन्न प्रकार के क्षेत्रीय आंदोलनों और दबावों से उत्पन्न होने वाली समस्या है। क्षेत्रवाद की समस्या का एक प्रमुख पहलू केंद्रीकरण (राष्ट्रीय सरकार की शक्तियों) की द्वंद्वात्मकता है) और सत्ता के हस्तांतरण के उचित पैटर्न के संबंध में केंद्र और राज्यों के बीच विकेंद्रीकरण (संबंधित राज्यों को शक्तियों का वितरण)। भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय आंदोलनों के विकास के पीछे सामान्य कारक क्षेत्रीय दलों की अधिक विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति, भारत की सांस्कृतिक और भाषाई विविधता, पूंजीवादी आर्थिक विकास की अपरिहार्य असमानता, कृषि पूंजीपति वर्ग और मध्यवर्ती वर्गों की बढ़ती ताकत हैं। ग्रामीण और शहरी निम्न पूंजीपति वर्ग), विपक्षी दलों की बढ़ती चुनावी ताकत और देश की लोकतांत्रिक मानसिकता का पतन। उप-राज्य आंदोलनों (दत्ता प्रभात, 1997) का लक्ष्य आम तौर पर या तो राज्य स्तर पर सत्ता हासिल करना होता है (यह असम आंदोलन का अंतर्निहित जोर था) या राज्य का दर्जा या 'स्वायत्त' परिषद का दर्जा (गोरखलैंड) जैसी कुछ हद तक राजनीतिक स्वायत्तता हासिल करना। असम गण परिषद (एजीपी) के मामले में, वे तथाकथित मुख्यधारा की राजनीति से अलग महसूस करते हैं और उन्होंने अपने क्षेत्र की विशिष्ट सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक मांगें उठाईं जो केवल एक विशेष जातीय समुदाय तक ही सीमित हैं। असम आंदोलन (1979-85) ने असम के केंद्र में अवैध रूप से बसे विदेशियों का पता लगाने, मताधिकार से वंचित करने और निर्वासित करने की मांग की और नागरिकों और विदेशियों के बीच अंतर की भविष्यवाणी की। उनका पूरी तरह से मानना है कि एक राष्ट्र-राज्य का अस्तित्व एक विदेशी और एक नागरिक (दत्ता प्रभात, 1997) के बीच अंतर करने और बनाए रखने की उसकी क्षमता पर निर्भर करता है। चूंकि असम एक उपेक्षित क्षेत्र है, जो लगातार सीमा पार से विशेषकर बांग्लादेश से विदेशियों की आमद का सामना कर रहा है, जिसका समाधान केंद्र सरकार द्वारा नहीं किया गया है और इस प्रकार यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ असम (उल्फा) ने संप्रभु और स्वतंत्र असम की मांग की, जहां वे ले जाने में सक्षम होंगे। उनका अपना प्रशासन. 70 के दशक में अलगाव के लिए मिज़ो संघर्ष का नेतृत्व मिज़ो नेशनल फ्रंट (एमएनएफ) और उसके सशस्त्र विंग मिज़ो नेशनल आर्मी (एमएनए) ने लालडेंगा के तहत मिज़ो लोगों के लिए राज्य स्वायत्तता की मांग की थी और अंततः भारतीय संघ के भीतर स्वायत्तता प्राप्त करके समझौता किया था। इसी प्रकार नागाओं को उनकी अलगाव की मांगों को पूरा करने के लिए सरकार द्वारा स्वायत्तता दी गई थी।

अलगाव कोई समाधान नहीं है बल्कि यह एकता और एकीकरण के पक्षधर भारत के लोकतांत्रिक ढांचे के लिए खतरा है। भारतीय लोकतंत्र की एकीकृत भावना को बनाए रखने के लिए अलग राज्य की मांग कर रहे क्षेत्र के लोगों के असंतोष के कारणों को दूर करना केंद्र सरकार की जिम्मेदारी है।

भारत में लोकतंत्र:- बहुसांस्कृतिक लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों की एक अवधारणा

निम्न स्तर की अर्थव्यवस्था, व्यापक गरीबी, अशिक्षा और विशाल जातीय विविधता के बावजूद भारत में लोकतंत्र ने जड़ें जमा ली हैं। दो प्रक्रियाओं (किमलिका.डब्ल्यू, 2002) ने सत्ता संघर्षों की बातचीत का मार्गदर्शन किया है। पहला, केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की ताकतों के बीच एक नाजुक संतुलन बनाया गया है और दूसरा, हाशिये पर मौजूद लोगों को पूरी तरह से बाहर किए बिना समाज में शक्तिशाली लोगों के हितों की सेवा की गई है। स्पष्ट है कि लोकतंत्र ने भारत की दुर्गम भूमि में बहुत गहरी जड़ें जमा ली हैं। इसने ऐतिहासिक रूप से सीमांत समूहों, विशेष रूप से समाज के सबसे दलित वर्ग के बीच, असंगत रूप से गहरी जड़ें जमा ली हैं। समान रूप से लोकतांत्रिक मूल्य बौद्धिक अभिजात वर्ग और संस्थानों के बीच स्थापित हो गए हैं जो लोकतंत्र की मजबूती के लिए महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीय समाचार पत्रों में खोजी रिपोर्टिंग जैसे कदमों ने भ्रष्टाचार और मजबूर राजनीतिक जवाबदेही को उजागर किया है, चुनाव आयोग की सावधानीपूर्वक योजना ने स्वतंत्र और निष्पक्ष आम चुनावों का आश्वासन दिया है और न्यायपालिका की विस्तारित भूमिका ने नागरिकों की नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता सुनिश्चित की है और भारत में लोकतांत्रिक शासन को और बढ़ाया है।

भारतीय संविधान के संस्थापकों की तरह, भारतीय लोकतंत्र का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने माना कि भारतीय परिस्थितियों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए उदार राज्य द्वारा कुछ अपवाद दिए गए थे, जिससे नागरिकों के सभी समूहों के बीच राष्ट्रीय एकता और

www.ignited.in

समानता सुनिश्चित हुई। स्थिर शासन के लिए राजनीतिक गठबंधनों के माध्यम से हाशिए पर रहने वाले सामाजिक समूहों को एक समावेशी राजनीतिक प्रक्रिया में शामिल किया जाता है। राज्य धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों की भी रक्षा करता है और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में उनकी प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक रूप से वंचित समूहों (निम्न सामाजिक-आर्थिक स्तर के व्यक्ति, दलित) की प्रतिस्पर्धात्मकता को मजबूत करता है। अपने मूल में प्रासंगिक लोकतंत्र की एक उदार दृष्टि थी जहां इसका उद्देश्य समुदाय के लोगों के व्यक्तिगत और समूह अधिकारों को संरक्षित करना था। राज्य का उद्देश्य बहुलवादी संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए विशिष्ट संस्कृतियों वाले सभी अल्पसंख्यक समूहों की पहचान को संरक्षित करना है। राजनीतिक समायोजन की रणनीति के माध्यम से उदार लोकतांत्रिक राज्य ने समुदाय की सांस्कृतिक पहचान की रक्षा करने का प्रयास किया और भारतीय राज्य के प्रति समुदाय या मतदाताओं की निष्ठा प्राप्त करने के लिए समान अवसर सुनिश्चित किए। भारत बहुसंस्कृतिवाद के मार्ग पर चल रहा है और यह अपने क्षेत्र में प्रमुख विविधताओं (धार्मिक, भाषाई, सांस्कृतिक और जातीय) को शामिल करता है। बहुसंस्कृतिवाद विश्वासों और व्यवहारों की एक प्रणाली है जो किसी संगठन या समाज में सभी विविध समूहों की उपस्थिति को पहचानती है और उनका सम्मान करती है, उनके सामाजिक-सांस्कृतिक मतभेदों को स्वीकार करती है और महत्व देती है, और एक समावेशी सांस्कृतिक संदर्भ में उनके निरंतर योगदान को प्रोत्साहित और सक्षम करती है जो सभी को एक के भीतर सशक्त बनाती है। संगठन जिसे समाज कहा जाता है। भारत बहुसांस्कृतिक पथ पर चलने वाले पहले कुछ लोकतंत्रों में से एक था। भारत अल्पसंख्यकों के अधिकारों को स्वीकार करता है और देश की सांस्कृतिक विविधता को महत्व देता है। लेकिन सवाल उठता है कि क्या लोकतांत्रिक राष्ट्र सामूहिक पहचान की भावना को बनाए रखते हुए सांस्कृतिक विविधता को समायोजित कर सकते हैं? क्या राष्ट्रीय भलाई और समानता की प्रतिबद्धता से समझौता किए बिना सांस्कृतिक विविधता की रक्षा और पोषण किया जा सकता है? असाधारण रूप से, भारत ने अल्पसंख्यकों के अधिकारों को स्वीकार किया और सांस्कृतिक विविधता को महत्व दिया? भारतीय बहुसांस्कृतिक संदर्भ में लोकतंत्र को सफलतापूर्वक कार्यशील बनाने के लिए, भारत ने सहयोग या शक्ति साझेदारी के साधनों का मार्ग अपनाया। एकता का मार्ग अपनाने में चार साधन स्पष्ट किये जा सकते हैं - वह है सांस्कृतिक स्वायत्तता, आनुपातिकता, महागठबंधन और राज्य-समाज संबंध।

लोकतंत्र: एक व्यापक अवधारणा

इसके व्यापक अर्थ में अंग्रेजी आर्थिक इतिहासकार रिचर्ड हेनरी टॉनी अपने शब्दों में लिखते हैं कि लोकतंत्र "...न केवल सरकार का एक रूप है बल्कि एक प्रकार का समाज और जीवन का एक तरीका है जो उस प्रकार के अनुरूप है"। तो, इस अर्थ में लोकतंत्र केवल व्यावहारिक राजनीति के लिए एक धारणा नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर क्षेत्र में एक प्रमुख तंत्र भी है। प्रत्येक व्यक्ति की लोकतांत्रिक नैतिकता, लोकतांत्रिक सोच और लोकतांत्रिक व्यवहार को लोकतंत्र के इस मानक पहलू से अलग नहीं किया जाना चाहिए।

लोकतंत्र: एक संकीर्ण अवधारणा

प्राचीन यूनानी सभ्यता में लोकतंत्र की समझ महज़ एक राजनीतिक व्यवस्था थी। 17वीं और 18वीं शताब्दी के दौरान, लोकतंत्र मुख्य रूप से आदर्श विचारों से संबंधित था। वर्तमान विश्व में मुख्यतः द्वितीय विश्व युद्ध के बाद लोकतंत्र आदर्शों एवं मूल्यों से मुक्त हो गया है। दूसरे शब्दों में, कई विद्वानों द्वारा इस बात पर जोर दिया गया है कि लोकतंत्र का पहलू पूरी तरह से राजनीतिक है (जैन, 2014)।

इस संबंध में कई प्रख्यात विद्वान जैसे जॉन ऑस्टिन, जेम्स ब्राइस, ए.वी. डाइसी, जॉन सीली और ए.एल. लोवेल लोकतंत्र के उन प्रतिपादकों में से हैं जिन्होंने लोकतंत्र की अवधारणा को मुख्य रूप से सरकार का एक रूप माना है (गाबा, 2014)।

हालाँकि, लोकतंत्र की परंपरा प्राचीन ग्रीक से मिलती है लेकिन 19वीं सदी तक राजनीतिक विचारकों ने इसे नहीं अपनाया था। अब ऐसा लगता है कि उदारवादी, कम्युनिस्ट, अराजकतावादी, रूढ़िवादी, समाजवादी और यहां तक कि फासीवादी जैसी सभी ताकतें लोकतंत्र के गुणों की उत्सुकता से घोषणा कर रही हैं (हेवुड, 2004)।

लोकतंत्र को परिभाषित करना

हेलिकार्नासस के हेरोडोटस ने लोकतंत्र को "सरकार के उस रूप के रूप में परिभाषित किया है जिसमें राज्य की सर्वोच्च शक्ति समग्र रूप से समुदाय के हाथों में निहित होती है"।

प्राचीन यूनानी दार्शनिक क्लियोन ने 2400 साल पहले लोकतंत्र को इस प्रकार परिभाषित किया था, "वह लोकतांत्रिक होगा, जो लोगों का, लोगों द्वारा और लोगों के लिए होगा।" आधुनिक काल में इस परिभाषा को अब्राहम लिंकन द्वारा पुनर्जीवित किया गया था "यह लोगों की, लोगों द्वारा और लोगों के लिए सरकार है"।

जेम्स ब्राइस ने परिभाषित किया है, "लोकतंत्र सरकार का वह रूप है जिसमें राज्य की सत्तारूढ़ शक्ति कानूनी रूप से किसी विशेष वर्ग या वर्गों में नहीं बल्कि पूरे समुदाय के सदस्यों में निहित होती है"।

मैज़िनी लिखते हैं, "लोकतंत्र सबसे अच्छे और बुद्धिमान लोगों की सरकार है, जो सभी की और सभी के माध्यम से प्रगति के लिए है।"

सीली ने एक सटीक परिभाषा दी है, "लोकतंत्र एक ऐसी सरकार है जिसमें हर किसी का हिस्सा होता है"।

लोकतंत्र की परिभाषाओं में, हम कह सकते हैं कि लोग राज्य शक्ति का मुख्य स्रोत हैं। यह बहुमत की सरकार है लेकिन इस सरकार में अल्पसंख्यकों के हितों की भी अनदेखी नहीं की जाती है (अग्रवाल, 2014)। लोकतंत्र को विभिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। इसे समाज, राज्य और सरकार के एक रूप के रूप में वर्णित किया गया है।

समाज के एक रूप के रूप में लोकतंत्र को परिभाषित किया गया है जिसमें सभी नागरिक सामाजिक रूप से समान हैं, चाहे उनकी भौतिक संपत्ति या सामाजिक प्रतिष्ठा कुछ भी हो। यह समान अधिकारों, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, निष्पक्ष राह में विश्वास रखता है और अल्पसंख्यकों की सहनशीलता का भी ध्यान रखा जाता है। राज्य के एक रूप के रूप में लोकतंत्र की परिभाषा यह है कि जनसंख्या के प्रत्येक क्षेत्र को वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव के माध्यम से विधायिका में समान रूप से प्रतिनिधित्व किया जाता है। हालाँकि, सरकार के एक रूप के रूप में लोकतंत्र ने यह निर्धारित किया कि लोग निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से

सरकार में भाग लेते हैं। विकिपीडिया लोकतंत्र की परिभाषा प्रस्तुत करता है कि "लोकतंत्र सरकार की एक प्रणाली है जिसके द्वारा राजनीतिक संप्रभुता लोगों द्वारा बरकरार रखी जाती है और नागरिकों द्वारा या उनके निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से सीधे प्रयोग की जाती है"।

लोकतंत्र के स्तंभ

- जनता की संप्रभुता.
- शासितों की सहमति पर आधारित सरकार।
- बहुमत का शासन.
- अल्पसंख्यक अधिकार.
- मौलिक मानवाधिकारों की गारंटी।
- स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव।
- कानून के समक्ष समानता.
- कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया।
- सरकार पर संवैधानिक सीमाएँ।
- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक बहुलवाद।
- सहिष्णुता, व्यावहारिकता, सहयोग और समझौता के मूल्य।

लोकतंत्र की अवधारणा और भारतीय संदर्भ में इसका विकास

आधुनिक भारत में लोकतंत्र का विकास और परिचय ब्रिटिश सरकार द्वारा किया गया। सुमित सरकार **(2001)** ने कहा कि भारत में लोकतंत्र की शुरुआत ब्रिटिश अंग्रेजी आदमी या अंग्रेजी शिक्षित भारतीयों की वास्तविक "लोकतांत्रिक भावना" से नहीं, बल्कि **1861** के भारतीय परिषद अधिनियम की दृढ़ आवश्यकता से होती है, जो पहली बार समय ने भारत के लोगों के उनके विधायी निकायों का प्रतिनिधित्व करने के अधिकारों को मान्यता दी है। भारतीय परिषद अधिनियम **1909** (जिसे मॉर्ले-मिंटो सुधारों के नाम से जाना जाता है) ने सभी विधायी परिषदों के आकार में वृद्धि की है, जिन्होंने वैकल्पिक सिद्धांत को कानूनी मान्यता दी है और गैर-आधिकारिक बहुमत प्रदान किया है और परिषदों की शक्तियों का विस्तार किया है। विशेष रूप से बजट सहित सार्वजनिक अत्यावश्यक मामलों पर प्रस्तावों को आगे बढ़ाने और मतदान करने की शक्ति। इसके अलावा, **1919** के अधिनियम (जिसे मोंटागु-चेम्सफोर्ड सुधार के रूप में जाना जाता है) ने लोकतंत्र की कुछ विशेषताओं को पेश किया जैसे सरकार की नीतियों और गतिविधियों की आलोचना, सार्वजनिक प्रशासनिक प्रणाली की बहाली। अंततः, **1935** का भारत सरकार अधिनियम देश में लोकतंत्र की वृद्धि और प्रगति में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर था। इसने देश में लोकतंत्र की लगभग हर विशेषता को स्थापित किया। इसने कई महत्वपूर्ण विशेषताएं पेश की हैं जैसे प्रांतीय सरकार के सभी विभागों को प्रशासन में जिम्मेदार मंत्रियों को स्थानांतरित करना, द्वैध शासन के विचार को महत्व दिया गया है और इसे प्रांतीय स्तर के बजाय संघ स्तर पर लागू करने के लिए तैयार किया गया है, मंत्रियों को इसका प्रभार दिया गया है सभी विषयों के लिए प्रशासन (रॉय, **2018**)। यह सुरक्षित रूप से कहा जा सकता है कि स्वतंत्रता-पूर्व काल में लोकतंत्र का विचार और अवधारणा भारत के लिए अपरिचित और अजीब नहीं थी। क्योंकि, ब्रिटिश भारत में और अंग्रेजों के भारत में आगमन से पहले भी लोकतंत्र और लोकतांत्रिक संस्थाएँ अस्तित्व में थीं। जैसा कि अतुल कोहली **(2001)** ने तर्क दिया कि इस देश में लोकतंत्र की जड़ों को समझने के लिए प्राचीन भारतीय प्रतिलेखों का गहन अध्ययन आवश्यक है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा का उल्लेख किया गया है। प्राचीन भारतीय महान दार्शनिक और राजनेता का तर्क था कि राजा को अपनी ख़ुशी लोगों की ख़ुशी से प्राप्त करनी चाहिए। वह सभी क्षेत्रों में कल्याण और भलाई में विश्वास करते हैं। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि लोकतंत्र की भारतीय मूल की अवधारणा भी ग्रीक से मिलती जुलती है। यूनानियों का भी मानना था कि लोकतंत्र लोगों की भलाई से संबंधित है। इसी प्रकार, लोकतंत्र की भारतीय मूल की अवधारणा भी इस बात पर जोर देती है कि लोकतंत्र की वास्तविक और सच्ची भावना जनता की भलाई और सशक्तिकरण के लिए जिम्मेदार है।

लोकतंत्र: भारत का एक प्रभावशाली लोकतंत्रीकरण प्रयोग

जब **26** जनवरी **1950** को दुनिया का सबसे लंबा लिखित संविधान बनाया गया तो भारत में लोकतंत्र की स्थापना हुई। लोकतंत्र के चैंपियंस ने सर्वसम्मति से कहा कि यह विचार ऐसे देश में लोकतंत्र का अभ्यास करने में विफल हो सकता है जहां **1951** की जनगणना के अनुसार साक्षरता दर **18.33** प्रतिशत से अधिक नहीं थी। अशिक्षा की तरह गरीबी भी अपने चरम पर थी। विभिन्न विद्वानों और विश्लेषकों को संदेह था कि ऐसे बहुलवादी समाज में गरीबी, अशिक्षा, सांस्कृतिक विविधता, भाषाई विविधता और धार्मिक विविधता जैसे कुछ कारकों को ध्यान में रखकर भारत में लोकतंत्र का प्रयोग कभी भी अपनी सफलता तक नहीं पहुंच सकता है। लेकिन इस देश ने लोकतंत्र का सहस्राब्दी ढाँचा बनाया है जिसे दुनिया के किसी भी देश में लागू और प्रयोग नहीं किया गया है। इस संबंध में छोटे-छोटे भागों में यूगोस्लाविया के विघटन का सबसे ताज़ा उदाहरण सामने आ सकता है। पच्चीस वर्षों के बाद, यूगोस्लाविया के सभी राज्य औपचारिक रूप से लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं क्योंकि वे लोकतंत्र के विचार को लोकतांत्रिक बनाने में विफल रहे हैं लेकिन भारत ने इसे सफलतापूर्वक किया है। इसलिए, भारत ने वास्तव में लोकतंत्र के विचार को लोकतांत्रिक और सार्वभौमिक बनाया और इसलिए अभाव और नुकसान की स्थितियों में इसका अभ्यास करना संभव बनाया।

अमेरिका स्थित अंतर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन "ह्यूमन राइट्स वॉच" ने भारत को इन शब्दों में रेखांकित किया है कि "भारत सरकार ने उत्पीड़न, धमकी और विदेशी फंडिंग पर प्रतिबंधों का उपयोग करके अपनी नीतियों की आलोचना करने वाले नागरिक समाज समूहों पर दबाव बढ़ा दिया है।" मुक्त भाषण पर राज्य और हित समूहों दोनों का हमला हुआ है, और सरकार के आलोचकों को अक्सर राजद्रोह और आपराधिक मानहानि के आरोपों का सामना करना पड़ता है और उन्हें "राष्ट्र-विरोधी" करार दिया जाता है। अधिकारी निगरानी समूहों द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ हमलों को संबोधित करने में विफल रहे हैं। जाति-प्रभावित समुदायों को भेदभाव का सामना करना पड़ रहा है" **(गोंसाल्वेस, 2018)**। अतः यह वास्तव में देखा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र तानाशाही के क्षेत्र में बहुत सघन है। इसलिए, हम केवल यह आशा कर सकते हैं कि देर-सबेर इस देश में एक वास्तविक लोकतांत्रिक सरकार स्थापित होगी जो सभी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक बुराइयों से मुक्त होगी और लोकतंत्र का विकास करेगी।

www.ignited.in

निष्कर्ष

लोकतंत्र सरकार का सर्वोत्तम रूप है क्योंकि यह लोगों के कल्याण के लिए काम करता है। सरकार के लोकतांत्रिक स्वरूप में, कानून के शासन के समक्ष सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार किया जाता है और कोई भी एक या दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा नहीं कर सकता है। सरकार की लोकतांत्रिक प्रणाली में, सभी पात्र नागरिक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से समान रूप से भाग लेते हैं। लोकतंत्र में सभी लोग अपने विचार स्पष्ट और स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के योग्य हैं। लोकतंत्र के बारे में एक आम धारणा यह हो सकती है कि यह सभी प्रकार की सरकार से बेहतर है क्योंकि कम से कम यह शासन करने के लिए सबसे अच्छे और बुद्धिमान व्यक्ति का चयन कर सकता है। एक आदर्श लोकतंत्र में वर्तमान नेतृत्व का प्रभाव हमारे देश में सबसे कम है। फिर भी, सत्तर साल के लंबे प्रयोग के बाद किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता कि हम सरकार के अपूर्ण स्वरूप के अधीन हैं। सरकार का लोकतांत्रिक स्वरूप अधिक लचीला है और इस प्रकार अधिक सफल है। लोकतंत्र प्रगति और शांति के लिए सर्वोत्तम उम्मीदें प्रदान करता है।

संदर्भ

1. गोंसाल्वेस पी. भारत के लिए शांति शिक्षा: एक विचार जिसका समय वापस आ गया है, डॉस जेपी और फर्नांडो एस (संपादक), पंखों वाले भविष्यद्वक्ता: आज के भारत में युवाओं का साथ। नई दिल्ली: ऑल इंडिया डॉन बॉस्को एजुकेशन सोसाइटी 2018, 161-183।
2. गुप्ता सोभनलाल दत्ता, "भारतीय राज्य का सामाजिक चरित्र", दास समीर कुमार और वनायक अचिन द्वारा संपादित (2014), द इंडियन स्टेट, नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ.55-60
3. कविराज सुदीप्तो, (2011), लोकतंत्र और भारत का आकर्षण; राजनीति और विचार, ओरिएंट ब्लैक स्वान प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.274-76
4. कोहली ए. भारत के लोकतंत्र की सफलता। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस 2001.
5. कोठारी रजनी, (2005), रीथिंकिंग डेमोक्रेसी, नई दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन पब. पृ.55-58
6. कोठारी रजनी, (2005), रीथिंकिंग डेमोक्रेसी, नई दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन पब. पृ.68-72
7. मायरोन वेनर, "समानता के लिए संघर्ष; भारतीय राजनीति में जाति", कोहली अतुल एड. (2008), पुनर्मुद्रण, (2011), भारत के लोकतंत्र की सफलता, नई दिल्ली, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस प्रकाशन, पृ.196-197
8. पुनियानी राम, (2010), धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र के लिए सांप्रदायिक खतरा, दिल्ली, कल्पाज पब, पृ.86-91
9. राजन नलिनी, (2002), लोकतंत्र और अल्पसंख्यक अधिकारों की सीमाएं, नई दिल्ली, सेज प्रकाशन, पृ.142-143
10. रॉय के. भारतीय लोकतंत्र की अवधारणा और प्रकृति: एक सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंस 2018; 6(3):202-2019।
11. तंवर आर. आधुनिक भारत में अर्थशास्त्र की प्रासंगिकता का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन। आईओएसआर जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड फाइनेंस (आईओएसआर-जेईएफ) 2014;5(3):32-35।

Corresponding Author

रवि प्रताप नागवंशी*

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर, उत्तर प्रदेश, भारत

Email - Ravi8181887351@gmail.com